**ओ३म्**

**‘देश की परतन्त्रता में मूर्तिपूजा की भूमिका पर महर्षि दयानन्द**

**का सन् 1874 में दिया एक हृदयग्राही ऐतिहासिक उपदेश’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 हमने विगत तीन लेखों में महर्षि दयानन्द के सन् 1874 में लिखित आदिम सत्यार्थ प्रकाश से हमारे देश आर्यावर्त्त में महाभारत काल के बाद अज्ञान व अन्धविश्वासों में वृद्धि, मूर्तिपूजा के प्रचलन, मन्दिरों के विध्वंश व इनकी अकूत सम्पत्ति की लूट, देश की परतन्त्रता आदि कारणों पर उनके उपदेशों को प्रस्तुत किया है। इसी क्रम में यह एक अन्य उपदेश प्रस्तुत कर इस श्रृंखला का समापन कर रहे हैं। महर्षि दयानन्द अपने इस उपदेश में कहते हैं कि देश के चार ब्राह्मणों ने अच्छा विचार किया कि कोई क्षत्रिय राजा इस देश में अच्छा नहीं है, इसका कुछ उपाय करना चाहिए। वे चारों ब्राह्मण अच्छे थे, क्योंकि सब मनुष्यों के ऊपर कृपा करके उन्होंने अच्छी बात विचारी। ऐसा करना अच्छे पुरुषों का काम है बुरों का नहीं। फिर उन्होंने क्षत्रियों के बालकों में से चार अच्छे बालक छांट लिए और उन क्षत्रियों से कहा कि तुम लोग बालकों के खाने पीने का प्रबन्ध रखना। उन्होंने स्वीकार किया और सेवक भी साथ रख दिए। वे सब आबू राजपर्वत के ऊपर जाके रहे और उन बालकों की अक्षराभ्यास और श्रेष्ठ व्यवहारों की शिक्षा करने लगे। फिर उनका यथाविधि संस्कार भी उन्होंने किया। सन्ध्योपासन और अग्निहोत्रादिक वेदोक्त कर्मों की शिक्षा उन्होंने की तत्पश्चात व्याकरण, छः दर्शन, काव्यालंकार सूत्र सनातन कोश, यथावत् पदार्थ विद्या उनको पढ़ाई। इसके बाद वैद्यक शास्त्र तथा गान विद्या, शिल्प विद्या और धनुर्विद्या अर्थात् युद्ध विद्या भी उनको अच्छी प्रकार से पढ़ाई। राजधर्म जैसा कि प्रजा से वर्तमान करना और न्याय करना, दुष्टों को दण्ड देना तथा श्रेष्ठों का पालन करना, यह भी सब पढ़ाया। ऐसे 25 वा 26 वर्ष की आयु उनकी हुई।

**मनमोहन कुमार आर्य**

उन पण्डितों की स्त्रियों (धर्मपत्नियों) ने इसी प्रकार से चार कन्या रूप गुण सम्पन्न को अपने पास रखके व्याकरण, धर्मशास्त्र, वैद्यक, गान विद्या तथा नाना प्रकार के शिल्प कर्म पढ़ाए और व्यवहार की शिक्षा भी की तथा युद्ध विद्या की शिक्षा, गर्भ में बालकों का पालन और पति सेवा का उपदेश भी यथावत् किया। फिर उन पुरुषों को परस्पर चारों का युद्ध करना और कराने का यथावत् अभ्यास कराया। इस प्रकार अध्ययन व अभ्यास करते हुए चालीस-चालीस वर्ष के वह पुरुष हुए। बीस-बीस वर्ष की वे कन्या हुईं। तब उनकी प्रसन्नता से और गुण परीक्षा से एक से एक का विवाह कराया। जब तक विवाह नहीं हुआ था, तब तक उन पुरुषों की और कन्याओं की यथावत् रक्षा की गई थी। इससे उनको विद्या, बल, बुद्धि तथा पराक्रम आदि गुण भी उनके शरीर में यथावत् हुए थे।

पश्चात उन पुरुषों से ब्राह्मणों ने कहा कि तुम लोग हमारी आज्ञा को मानों। तब उन सबों ने कहा कि जो आपकी आज्ञा होगी, वही हम करेंगे। तब उन ब्राह्मणों ने उनसे कहा कि हमने तुम्हारे ऊपर परिश्रम किया है सो केवल जगत् के उपकार के हेतु किया है। सो आप लोग देखों कि आर्यावर्त्त में गदर मच रहा है। मुसलमान लोग इस देश में आकर बड़ी दुर्दशा करते हैं और धन आदि लूट के ले जाते हैं। सो इस देश की नित्य दुर्दशा होती जाती है। आप लोग यथावत् राजधर्म से प्रजा का पालन करो और दुष्टों को यथावत् दण्ड दो। परन्तु एक उपदेश सदा हृदय में रखना कि जब तक वीर्य की रक्षा और जितेन्द्रिय रहोगे, तब तक तुम्हारा सब कार्य सिद्ध होता जायेगा और हमने तुम्हारा विवाह अब जो कराया है सो केवल परस्पर रक्षा के हेतु किया है कि तुम और तुम्हारी स्त्रियां संग-संग रहोगे तो बिगड़ोगे नहीं और केवल सन्तानोत्पत्ति मात्र विवाह का प्रयोजन जानना और मन से भी पर-पुरुष वा पर-स्त्री का चिन्तन भी नहीं करना और विद्या तथा परमेश्वर की उपासना और सत्यधर्म में सदा उपस्थित रहना। जब तक तुम्हारा राज्य न जमें, तब तक स्त्री पुरुष दोनों ब्रह्मचर्याश्रम में रहो क्योंकि जो क्रीड़ासक्त होगे तो तुम्हारे शरीर से बल आदि न्यून हो जायेंगे। इससे युद्धादि में उत्साह भी न्यून हो जायगा और हम भी एक-एक के साथ एक-एक रहेंगे। अब हम और आप लोग चलें और चल के यथावत् राज्य का प्रबन्ध करें। फिर वे वहां से चले। वह चार इन नामों से प्रख्यात थे, चौहान, पंवार, सोलंकी इत्यादि। उन्होने दिल्ली आदि में राज्य किया था। जब वह राज्य करने लगे थे तब कुछ-कुछ सुप्रबन्ध भी हुआ था।

कुछ काल के पीछे एक मुसलमान सहाबुद्दीन गोरी भी उसी प्रकार इस देश कन्नौज आदि में आया था। उस समय कन्नौज का बड़ा भारी राज था सो इसके भय के मारे अपने ही लोग जाके उसको मिले और युद्ध कुछ भी नहीं किया क्योंकि उस वक्त राजाओं के शरीर स्त्री के शरीर से भी कोमल थे, इससे वे क्या युद्ध कर सकते? फिर अन्यत्र युद्ध जहां-तहां किया सो उस सहाबुद्दीन गोरी का विजय हुआ और आर्यावत्र्त वालों का पराजय हुआ। पश्चात दिल्ली वालों से किसी समय उसका युद्ध हुआ। उस युद्ध में पृथ्वीराज मारा गया और उस सहाबुद्दीन गोरी ने अपना सेनाध्यक्ष दिल्ली में रक्षा के हेतु रख दिया। उसका नाम कुतुबद्दीन था। वह जब वहां रहा तब कुछ दिन के पीछे उन राजाओं को निकाल के आप राजा हुआ। उस दिन से मुसलमान लोग यहां राज्य करने लगे और सबने कुछ-कुछ जुलुम किया। परन्तु उनके बीच में से अकबर बादशाह कुछ अच्छा हुआ और न्याय भी संसार में होने लगा। सो अपनी बहादुरी से और बुद्धि से सब गदर मिटा दिया। उस समय राजा और प्रजा सब सुखी थे।

आर्यावर्त्त के राजा और धनाढ्य लोग विक्रमादित्य के पीछे सब विषय सुख में फंस रहे थे। उससे उनके शरीर में बल, बुद्धि, पराक्रम और शूरवीरता प्रायः नष्ट हो गई थी, क्योंकि सदा स्त्रियों का संग, गाना बजाना, नृत्य देखना, सोना, अच्छे-अच्छे कपड़े और आभूषण को धारण करना, नाना प्रकार के इत्र और अंजन नेत्र में लगाना, इससे उनके शरीर बड़े कोमल हो गए थे कि थोड़े से ताप वा शीत अथवा वायु का सहन नहीं हो सकता था। फिर वे युद्ध क्या कर सकते, क्योंकि जो नित्य स्त्रियों का संग और विषय भोग करेंगे, उनका भी शरीर प्रायः स्त्रियों जैसा हो जाता है। वे कभी युद्ध नहीं कर सकते, क्योंकि जिनके शरीर दृढ़, रोग रहित, बल, बुद्धि और पराक्रम तथा वीर्य की रक्षा करना और विषय भोग में नहीं फंसना, नाना प्रकार की विद्या का पढ़ना इत्यादि के होने से सब कार्य सिद्ध हो सकते हैं, अन्यथा नहीं।

फिर दिल्ली में औरंगजेब एक बादशाह हुआ था। उसने मथुरा, काशी, अयोध्या और अन्य स्थान में भी जा-जा के मन्दिर और मूर्तियों को तोड़ डाला और जहां-जहां बड़े-बड़े मन्दिर थे, उस-उस स्थान पर अपनी मस्जिद बना दी। जब वह काशी में मन्दिर तोड़ने को आया तब विश्वनाथ कुंए में गिर पड़े और माधव एक ब्राह्मण के घर में भाग गए, ऐसा बहुत मनुष्य कहते हैं, परन्तु हमको यह बात झूठ मालूम पड़ती है, क्योंकि वह पाषाण वा धातु जड़ पदार्थ कैसे भाग सकता है, कभी नहीं। सो ऐसा हुआ होगा कि जब औरंगजेब आया तब पुजारियों ने भय से मूर्ति को उठाके उसे कुंए में डाल दिया और माधव की मूर्ति उठा के दूसरे घर में छिपा दी कि वह उसे न तोड़ सके। सो आज तक उस कुंए का बड़ा दुर्गन्धयुक्त जल पीते हैं और उसी ब्राह्मण के घर की माधव की मूर्ति की आज तक पूजा करते हैं।

देखना चाहिए कि पहिले तो सोने व चांदी की मूर्तियां बनाते थे तथा हीरा और माणिक की आंख बनाते थे। सो मुसलमानों के भय से और दरिद्रता से पाषाण, मिट्टी, पीतल, लोहा और काष्ठ आदि की मूर्तियां बनाते हैं। सो अब तक भी इस सत्यानाश करने वाले कर्म को नहीं छोड़ते, क्योंकि छोडें तो तब जो इनकी अच्छी दशा आवे। इनकी तो इन कर्मों से दुर्दशा ही होने वाली है जब तक कि इनको (मूर्ति पूजा) नहीं छोड़ते।

और महाभारत युद्ध के पहले आर्यावर्त्त देश में अच्छे-अच्छे राजा होते थे। उनकी विद्या, बुद्धि, बल, पराक्रम तथा धर्म निष्ठा और शूरवीरता आदि गुण अच्छे-अच्छे थे। इससे उनका राज्य यथावत् होता था। सो इक्ष्वाकु, सगर, रघु, दिलीप आदि चक्रवर्त्ती राजा हुए थे और किसी प्रकार का पाखण्ड उनमें नहीं था। सदा विद्या की उन्नति और अच्छे-अच्छे कर्म आप किया करते थे तथा प्रजा से कराते थे। कभी उनका पराजय नहीं होता था तथा अधर्म से कभी नहीं युद्ध करते थे और युद्ध से निवृत्त कभी नहीं होते थे। उस समय से लेके जैन राज्य के पहिले तक इसी देश के राजा होते थे, अन्य देश के नहीं। सो जैनों ने और मुसलमानों ने इस देश को बहुत बिगाड़ा है। सो आज तक बिगड़ता ही जाता है। आजकल अंग्रेजों का राज्य होने से उन (जैन व मुसलमान) राजाओं के राज्य से कुछ सुख हुआ है, क्योंकि अंग्रेज लोग मत-मतान्तर की बात में हाथ नहीं डालते और जो पुस्तक अच्छा पाते हैं, उसकी अच्छी प्रकार रक्षा करते हैं। और जिस पुस्तक के सौ रुपये लगते थे, उस पुस्तक का छापा होने से पांच रुपये में मिलता है। परन्तु अंगरेजों से भी एक काम अच्छा नहीं हुआ जो कि चित्रकूट पर्वत पर महाराज अमृतराज जी के पुस्तकालय को जला दिया। उसमें करोड़ों रूपये के लाखों अच्छे-अच्छे पुस्तक नष्ट कर दिये।

जो आर्यावर्त्त वासी लोग इस समय सुधर जायें तो सुधर सकते हैं और जो पाखण्ड ही में रहेंगे तो इनका अधिक-अधिक नाश ही होगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं। क्योंकि बड़े-बड़े आर्यावर्त्त देश के राजा और धनाढ्य लोग ब्रह्मचर्याश्रम, विद्या का प्रचार, धर्म से सब व्यवहारों का करना और वैश्या तथा पर-स्त्री-गमन आदि का त्याग करें तो देश के सुख की उन्नति हो सकती है। परन्तु जब तक पाषाण आदि मूर्तिपूजन, वैरागी, पुरोहित, भट्टाचार्य और कथा कहने वालों के जालों से छूटें, तब उनका अच्छा (भाग्योदय) हो सकता है, अन्यथा नहीं।

प्रश्न-मूर्ति पूजन आदि सनातन से चले आए हैं उनका खण्डन क्यों करते हो? उत्तर--यह मूर्तिपूजन सनातन से नहीं किन्तु जैनों के राज्य से ही आर्यावर्त्त में चला है। जैनों ने परशनाथ, महावीर, जैनेन्द्र, ऋषभदेव, गोतम, कपिल आदि मूर्तियों के नाम रक्खे थे। उनके बहुत-बहुत चेले हुये थे और उनमें उनकी अत्यन्त प्रीति भी थी। इस लिये उन चेलों ने अपने मन्दिर बनाके अपने गुरुओं की मूर्ति पूजने लगे। फिर जब उनका शंकराचार्य ने पराजय कर दिया, इसके पीछे उक्त प्रकार से ब्राह्मणों ने मूर्तियां रची और उनके नाम महादेव आदि रख दिए। जैनों की उन मूर्त्तियों से कुछ विलक्षण बनाने लग गये और पुजारी लोग जैन तथा मुसलमानों के मन्दिरों की निन्दा करने लगे।

**‘न वदेद्यावनीं भाषां प्राणैः कण्ठगतैरपि। हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम्।।1।।’** इत्यादि श्लोक बनाए हैं कि मुसलमानों की भाषा बोलनी और सुननी भी नहीं चाहिए और यदि पागल हाथी किसी के पीछे मारने को दौड़े, तो यदि वह जैन के मन्दिर में जाने से बच भी सकता हो तो भी जैन के मन्दिर में न जाये किन्तु हाथी के सन्मुख मर जाना उससे अच्छा है। ऐसे निन्दा के श्लोक (इन मूर्ति पूजकों ने) बनाए हैं। सो पुजारी, पण्डित और सम्प्रदायी लोगों ने चाहा कि इनके खण्डन के विना हमारी आजिविका न बनेगी। यह केवल उनका मिथ्याचार है। मुसलमानों की भाषा (उर्दू, अरबी व फारसी आदि) पढ़ने में अथवा किसी अन्य देश की भाषा पढ़ने में कुछ दोष नहीं होता, किन्तु कुछ गुण ही होता है। **‘अपशब्दज्ञानपूर्वके शब्दज्ञाने धर्मः।’** यह व्याकरण महाभाष्य (आन्हिक 1) का वचन है। इसका यह अभिप्राय है कि अपशब्द ज्ञान अवश्य करना चाहिए, अर्थात् सब देश देशान्तर की भाषा को पढ़ना चाहिए, क्योंकि उनके पढ़ने से बहुत व्यवहारों का लाभ होता है और संस्कृत शब्द के ज्ञान का भी उनको (जिनसे व्यवहार करते हैं) यथावत् बोध होता है। जितनी देशों की भाषायें जानें, उतना ही उन पुरुषों को अधिक ज्ञान होता है, क्योंकि संस्कृत के शब्द बिगड़ के ही सब देश भाषायें होती हैं, इससे इनके ज्ञानों से परस्पर संस्कृत और भाषा के ज्ञान में उपकार ही होता है। इसी हेतु महाभाष्य में लिखा है कि अपशब्द-ज्ञानपूर्वक शब्दज्ञान में धर्म होता है अन्यथा नहीं। क्योंकि जिस पदार्थ का संस्कृत शब्द जानेगा और उसके भाषा शब्द को न जानेगा तो उसको यथावत् पदार्थ का बोध और व्यवहार भी नहीं हो सकेगा। महाभारत में लिखा है कि युधिष्ठिर और विदुर आदि अरबी आदि देश भाषा को जानते थे। इस लिए जब युधिष्ठिर आदि लाक्षा गृह की ओर चले, तब विदुर जी ने युधिष्ठिर जी को अरबी भाषा में समझाया और युधिष्ठिर जी ने अरबी भाषा से प्रत्युत्तर दिया, यथावत् उसको समझ लिया। राजसूय और अश्वमेध यज्ञ में देश-देशान्तर तथा द्वीप-द्वीपान्तर के राजा और प्रजास्थ पुरुष आर्यावर्त्त में आए थे। उनका परस्पर (अनेक) देश भाषाओं में व्यवहार होता था तथा द्वीप-द्वीपान्तर में यहां के जन जाते थे और वह इस देश में आते थे फिर जो देश-देशान्तर की भाषा न जानते होते तो उनका व्यवहार सिद्ध कैसे होता? इससे क्या आया कि देश-देशान्तर की भाषा के पढ़ने और जानने में कुछ दोष नहीं, किन्तु बड़ा उपकार ही होता है।

महर्षि दयानन्द इसी क्रम में आगे लिखते हैं कि जितने पाषाण मूतिर्यों के मन्दिर हैं वे सब जैनों ही के हैं, सो किसी मन्दिर में किसी को जाना उचित नहीं, क्योंकि सब में एक ही लीला है। जैसी जैन मन्दिरों में पाषाणादि मूर्तियां हैं, वैसी आर्यावर्त्तवासियों के मन्दिरों में भी जड़ मूर्तिंया हैं। कुछ विलक्षण-विलक्षण नाम इन लोगों ने रख लिये हैं और कुछ विशेष नहीं। केवल पक्षपात ही से ऐसा करते हैं कि जैन मन्दिरों में न जाना और अपने मन्दिरों में जाना। यह सब लोगों ने आजाविका के हेतु अपना-अपना मतबलसिंधु बना लिया है।

यह उल्लेखनीय है कि महर्षि दयानन्द मूर्तिपूजा को ईश्वर ज्ञान वेदों के विरूद्ध, ज्ञान विरूद्ध, युक्ति, तर्क व प्रमाणों के विरूद्ध अनुपयोगी व ईश्वर की प्राप्ति में सहायक नहीं अपितु बाधक एवं इसे ऐसी खाई बताते हैं जिसमें गिरकर मूर्तिपूजक के जीवन का अन्त हो जाता, लाभ कुछ नहीं होता। वह ज्ञानस्वरूप, निराकार, सर्वव्यापक, सच्चिदानन्दादि स्वरूप, सब सुखों को देने वाले ईश्वर की महर्षि पतंजलि की योगविधि से वेदसम्मत स्तुति, प्रार्थना व उपासना के अनुगामी व प्रचारक थे। धार्मिक विषयों पर उनका विश्लेषण व निष्कर्ष था कि देश का पतन व परतन्त्रता का कारण मूर्तिपूजा, फलित ज्योतिष तथा सामाजिक असमानता जैसे अन्धविश्वास व मिथ्याचार आदि कार्य व व्यवहार थे। व्यक्ति, समाज व देश को सुदृण बनाने के लिए अज्ञान व अन्धविश्वासों से बचना व इन्हें छोड़ना आवश्यक है। इसके साथ लेख को विराम देते हैं।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**